वर्ष : 5
अंक : 17–18
जनवरी–जून 2017
मूल्य : 500

ISSN 2320 – 8325
Impact Factor : 3.006

दर्शन

दर्शनशास्त्र, संस्कृत साहित्य एवं योग विषयों से सम्बन्धित अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित त्रैमासिक शोध-पत्रिका

(UGC Approved List No. : 44517)

संपादक
आचार्य (डॉ.) शीलक राम

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्

आचार्य अकादमी, भारत
ISO 9001:2008

Scanned by CamScanner

शोध-आलेखानुक्रम

- विक्रमांक के कुन्दमाला नाटक में अद्भुत रस समीक्षण — 10-18
  बाबूलाल मीना
- वैदिकवाङ्मये वायव्यपर्यावरणचेतना — 19-25
  डॉ० आचार्यबृहस्पतिमिश्रः
- राजशेखर के बालरामायणम् नाटक में अद्भुत रस विवेचन — 26-30
  डॉ० आशा सिंह
- गीता के ज्ञानमार्ग का एक विश्लेषण — 31-38
  सन्तोष कुमार
- अशुद्ध की समस्या का दार्शनिक अध्ययन — 39-44
  सोनिया रानी
- प्रेमचन्द के साहित्य में उपस्थित राजनीतिक दर्शन विविध आयाम — 45-50
  अरुणा
- गांधी-दर्शन में मानवीय मूल्यों के एकादश आधार (एक सैद्धान्तिक अध्ययन) — 51-58
  तेजराम पाल
- **Aurobindo's Philosophy and The Concept of Human Unity** — 59-67
  Dr. Surender Kumar
- **Philosophy of Non-Violence of Gandhi** — 68-70
  Rajesh Chahal
- **A Journey to the Land of Legendary Masters** — 71-76
  Prof. Ravi Sharma, Afshana Shafi
- प्रमुख वेदान्त दर्शनों में "तत्त्वमसि"-एक व्याख्या — 77-83
  डॉ.ममता भाटी
- रामायण में नैतिक मूल्यों की अवधारणा — 84-86
  डॉ० जय सिंह
- जैन धर्म/दर्शन में ध्यान का स्वरूप — 87-93
  डॉ० पुनीत कुमार मिश्र
- योगवसिष्ठरामायण के सन्दर्भ में बन्धन और मोक्ष — 94-98
  डॉ० विश्वम्बर दास
- कश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त — 99-102
  शील कुमार
- व्याकरणशास्त्रे महर्षिपाणिनेः कालविषयकं चिन्तनम् — 103-107
  प्रतिष्ठा आर्या
- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यपरकता की आवश्यकता — 108-111
  प्रियंका आर्या
- वेदों में चिकित्सा विज्ञान (विशेषतः जलीयचिकित्सा के सन्दर्भ में) — 112-115
  प्रतिष्ठा आर्या

Scanned by CamScanner

International Refereed
दर्शन अन्तरराष्ट्रिय मूल्यांकित त्रैमासिक शोध-पत्रिका
वर्ष:9, अंक:17-18, (पृ.सं. 77-83) (ISSN: 2320-8325)

प्रमुख वेदान्त दर्शनों में "तत्त्वमसि" एक व्याख्या

डॉ.कमला पारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
महिला पी. जी. महाविद्यालय
जोधपुर (राजस्थान)

शोध आलेख सार
"तत्त्वमसि" अर्थात् वह शुद्ध आत्मतत्त्व तू ही है। इस महावाक्य से जीव व ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। इस उपदेश को सुनकर साधक को "अहं ब्रह्मास्मि" का ज्ञान होता है। अर्थात् साधक यह अनुभव करता है कि मैं ब्रह्म ही हूँ। इस ज्ञान के बल पर जीव और ब्रह्म का भेदभाव मिट जाता है तथा एकत्व का ज्ञान होता है।

मुख्य शब्द : अद्वैतवाद, तत्वमसि, विशिष्टाद्वैतवाद, चित्-अचित् अद्वैत, सायुज्य मुक्ति, द्वैतवाद, भेदाभेद, शुद्धाद्वैत, अभिन्ननिमित्तोपादान ।

वेदान्त दर्शनों में जीव व ब्रह्म का सम्बन्ध भिन्न भिन्न प्रकार से माना गया है। इस सम्बन्ध में शंकर का मत अद्वैतवाद के रुप में जाना जाता है जो कि जीव और ब्रह्म की एकता को स्वीकार करता है। रामानुज जीव व ब्रह्म में अपृथक्सिद्धि सम्बन्ध मानते है उनका यह मानना है कि तत्व सदा द्वैतविशिष्ट अद्वैत होता है। इसलिए रामानुज का मत विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है। मध्व जीव व ईश्वर के सम्बन्ध में द्वैतवादी विचारधारा का प्रतिपादन करते है। उनके अनुसार जीव ब्रह्म से भिन्न है तथा वह ब्रह्म पर आश्रित है। निम्बार्क का मत द्वैताद्वैतवादी है यहाँ जीव मुक्तावस्था में भगवान से अभिन्न है किन्तु अपने अणुरुप में स्थित होने तथा ईश्वर द्वारा नियम्य होने के कारण उनसे भिन्न भी है। वल्लभ सम्प्रदाय शुद्धाद्वैत मत का प्रतिपादन करता है जिसका अर्थ है जगत् और जीव शुद्ध ब्रह्म के ही रुप है और ब्रह्म से अभिन्न है।

शंकर की अद्वैतवादी धारणा

जीव व ब्रह्म के सम्बन्ध में शंकराचार्य ने जिस दार्शनिक सिद्धान्त का निरूपण किया है उसे अद्वैतवाद के नाम से जाना जाता है। यह मत जीव और ब्रह्म की एकता को स्वीकार करता है। शंकर तात्विक दृष्टि से इनमें किसी भी प्रकार के भेद को अस्वीकार करते है। अद्वैत वेदान्त की मुख्य मान्यता यह है कि परमार्थ सत्ता रूप ब्रह्म एक ही है। यह सारा विश्व प्रपंच एक ही अद्वितीय तत्व ब्रह्म में अन्तर्भूत, स्थित और प्रकाशित है। वही सारे दृश्यमान जगत को प्रकाशित करने वाला, स्वयंप्रकाश, अनन्त, अखण्ड, अनादि, अविनाशी और आनन्दमय है।

शंकर के अद्वैतवाद की मुख्य धारणा यह है कि जीव व ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टि से अभिन्न है। माया या अविद्या के कारण ब्रह्म की प्रतीति ईश्वर और जीवों के रूप में होती है।

वस्तुत: जीव व ब्रह्म में पारमार्थिक रूप में कोई भेद नही है। परन्तु अन्त:करणावच्छिन्न चैतन्य जीव स्वयं को ब्रह्म से भिन्न समझने लगता है। परन्तु जब आत्मज्ञान द्वारा अविद्या निवृत्ति हो जाती है तो जीव अपने शुद्धात्म स्वरूप में प्रकाशित होता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार एक ही कूटस्थ नित्य विशुद्ध विज्ञान स्वरूप

Scanned by CamScanner

परमात्मतत्व है और यह विज्ञानमात्र अविद्या से अनेक रूपों में प्रतीत होता है तथा इसके अतिरिक्त अन्य कोई तत्व नहीं है।[1] जीवात्मा में जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है, वही ब्रह्मरूप से इस समस्त विश्व में भी व्याप्त है। शुद्ध अखण्ड चैतन्य ही जीव और जगत् के रूप में प्रतीत होता है। आत्मा और ब्रह्म न होकर अखण्ड चैतन्य रूप में एक ही तत्व है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान में पारमार्थिक रूप में कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार मिट्टी का ज्ञान होने पर मिट्टी से बने सारे पदार्थों का (घड़े, सुराही आदि का) ज्ञान हो जाता है, इसी प्रकार परम तत्व का ज्ञान हो जाने पर, जड़ चेतनमय समस्त विश्व का ज्ञान हो जाता है क्योंकि विश्व के सारे चित्-अचित् पदार्थ नाम, रूप और विकारमात्र हैं, सत्य केवल परम तत्व है। वह अखण्ड चैतन्य ब्रह्म या आत्मतत्व है। सद्गुरु के द्वारा साधक को ऐसा ज्ञान देने के पश्चात् यह कहा जाता है कि "तत्त्वमसि" अर्थात् वह शुद्ध आत्मतत्व तू ही है। इस महावाक्य से जीव व ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। इस उपदेश को सुनकर साधक को **'अहं ब्रह्मास्मि"** का ज्ञान होता है। अर्थात् साधक यह अनुभव करता है कि मैं ब्रह्म ही हूँ। इस साधन के बल पर जीव और ब्रह्म का भेदभाव मिट जाता है तथा एकत्व का ज्ञान होता है। पश्चात् साधक को **'अयमात्मा ब्रह्म"** तथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का ज्ञान होता है। अर्थात् अपने से भिन्न व्यक्तियों के लिए भी उसे यह ज्ञान हो जाता है कि यह आत्मा भी ब्रह्म है। ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है यही सब कुछ है, उससे अलग कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है। नेह नानास्ति किञ्चन[4] अर्थात् यहाँ कुछ भी अनेक नहीं है। **"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"** अर्थात् ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म हो जाता है तथा 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'[5] अर्थात् यहाँ जो नानात्व देखता है वह बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता है। इस प्रकार का ज्ञान साधक को प्राप्त हो जाता है। यह ज्ञान जीव व ब्रह्म के ऐक्य को सिद्ध करता है।

रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद

रामानुज ने अपने दर्शन में तीन मूल तत्व माने है - चित्, अचित् एवं ईश्वर। इनमें चित् व अचित् दोनों नित्य और परस्पर स्वतन्त्र द्रव्य है। चित् चेतन भोक्ता जीव है, अचित् जड़ भोग्य जगत् है तथा ईश्वर इन दोनों का अन्तर्यामी है। ये चित् व अचित् ईश्वर पर आश्रित है और सर्वथा उनके अधीन है। ये स्वयं में द्रव्य है किन्तु ईश्वर के गुण या धर्म है। चित् व अचित् ईश्वर के शरीर है और ईश्वर उनका अन्तर्यामी आत्मा है। जीव अपने शरीर का आत्मा है किन्तु ईश्वर का शरीर है जो जीव का भी आत्मा है। शरीर और आत्मा का सम्बन्ध अपृथकसिद्धि है जो आन्तरिक अपार्थक्य सम्बन्ध है। रामानुज के अनुसार **'शरीर'** वह है जो आत्मा द्वारा धारण किया जाये (धार्य), नियमन किया जाये (नियाम्य), तथा अपनी अर्थसिद्धि के लिए साधन के रूप में प्रवृत किया जाये (शेष), तथा "आत्मा" वह है जो शरीर को धारण करे (धर्ता) नियमन करे (नियन्ता) और जो साधन रूप में प्रवृत होने वाले शरीर का साध्य हो अर्थात् शेषी हो। इसी कारण सभी चित् व अचित् परमपुरूष ईश्वर द्वारा नियाम्य, धार्य तथा शेष होने के कारण उनका शरीर है[6] तथा ईश्वर चिद्चिद्विशिष्ट है।[7] ये चिद्चिद् ईश्वर के विशेषण, धर्म, गुण, प्रकार, अंश, अंग, शरीर, नियाम्य, धार्य और शेष है, तथा ईश्वर उनके विशेष्य, धर्मी, द्रव्य, प्रकारी, अंगी, शरीरी या आत्मा, नियन्ता, धर्ता तथा शेषी है। चिद्चिद् दोनों ईश्वर के समान् नित्य है किन्तु ईश्वर से बाह्य और पृथक नहीं है।

रामानुज ने जो चिद्चिद्विशिष्ट ईश्वर का निरूपण किया है इसका वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी मिलता है। श्वेताश्वतर का भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरिता को यहाँ चित्, अचित् तथा ईश्वर के रूप में गृहीत किया गया है।[11] श्वेताश्वतर उपनिशद् का वाक्य है - अज, सर्वज्ञ ईश्वर, अज, अल्पज्ञ भोक्ता जीव, और अज भोग्याप्रकृति, ये तीनों ब्रह्म ही है।[12] बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म को "सूत्र" बताया गया है जो सब जीवों और पदार्थों को आबद्ध किये है। यह अन्तर्यामी अमृत आत्मा जड़ प्रकृति और चेतन जीवों में अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहकर उनका नियमन करता है, जड़ प्रकृति और चेतन जीवन इस आत्मा के शरीर है।[13] रामानुज का

Scanned by CamScanner

यह मानना है कि चिन्गारी जिस प्रकार अग्नि का अंश है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म का अंश है। जिस प्रकार रथ चक्र में अरे बंधे रहते है, उसी प्रकार जीव और जगत् परमात्मा मे आबद्ध है।

जीव व ईश्वर का सम्बन्ध रामानुज के मत में अभेदसूचक एकता नही है क्योंकि जीव अल्पज्ञ तथा अनन्त है जबकि ईश्वर सर्वज्ञ तथा एक है। ऐसी दशा में दोनों मे अभेद कैसे बना रह सकता है ? इस के प्रत्युत्तर में रामानुज का कथन है कि ईश्वर प्रत्येक जीव मे व्याप्त है तथा भीतर से उसका नियमन करता हुआ **'अन्तर्यामी'** है। इस दृष्टि से दोनों मे अभेद माना जा सकता है।[14] जिस प्रकार अंश का अस्तित्व अंशी पर निर्भर रहता है और गुण का द्रव्य पर, उसी प्रकार जीव की सत्ता ईश्वर पर निर्भर रहती है क्योंकि जीव अंश है और ईश्वर अंशी है, जीव नियम्य है और ईश्वर नियामक है। इस तरह के सम्बन्ध होने से यह स्पष्ट होता है कि जीव ईश्वर के ऊपर आश्रित तथा निर्भर रहता है। ऐसी स्थिति में ईश्वर की शरण में गए बिना जीव का निस्तार तथा कल्याण नहीं हो सकता। ईश्वर अशेष गुणों का आकार है,दया का समुद्र है तथा करूणा निधि है अतः वह जीव की दीन-हीन दशा को देखकर स्वयं द्रवित हो जाता है। रामानुज के मतानुसार जीव-ईश्वर के निर्णय से स्पष्ट हो जाता है कि प्रपति (शरणागति) ही जीव की आध्यात्मिक उन्नति का सर्वश्रेश्ठ साधन है।

जीव व ब्रह्म के सम्बन्ध में रामानुज की **'तत्वमसि'** की व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार की है। ''त्वं'' पदार्थ साधरणतया जीव का प्रतीक माना जाता है पर विशिष्टाद्वैत मत में **'त्वं'** का अर्थ अचिद्विशिष्ट जीव-शरीरवाला ब्रह्म से है। **'तत्'** पद से अभिप्राय सर्वज्ञ, सत्य संकल्प, जगत् कारण ईश्वर से है। इस प्रकार इस महावाक्य की रामानुजीय व्याख्या का अर्थ है कि **'अन्तर्यामी ईश्वर तथा विश्वप्रपञ्च का निर्माता ईश्वर दोनों की तात्विक एकता है'** अर्थात् एक विशेषण से विशिष्ट ईश्वर तदन्यविशेषण से विशिष्ट ईश्वर के साथ नितान्त अभिन्न है। अतः एकत्व विशिष्टि ईश्वर का ही है। इसी कारण रामानुज सिद्धान्त को विशिष्टाद्वैत की संज्ञा दी गई है।[15] जबकि शंकर की **'तत्वमसि'** व्याख्या जीव और ब्रह्म के अखण्ड चैतन्यात्मक स्वरूपैक्य का प्रतिपादन करती है।

मध्वाचार्य की द्वैतवादी मान्यता

शंकराचार्य जीव व ब्रह्म में अभिन्नता मानतें है। जबकि रामानुज जीव व ब्रह्म में अपृथक्सिद्धि सम्बन्ध मानते है। मध्व के विचार इनसे भिन्न है। वे जीव व ब्रह्म में एक स्पष्ट भेद स्वीकार करते है। यह भेद जीव के बन्धन की अवस्था में भी रहता है तथा मुक्तावस्था में भी रहता है। ब्रह्म व जीव अपने आन्तरिक स्वभाव से एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा स्वामी है जबकि जीव शूद्र तथा सेवक है, ब्रह्म स्वतन्त्र है, जीव परतन्त्र है। दोनों में कभी भी तादात्म्य नहीं हो सकता। मध्व के विचार में मोक्ष का अर्थ ही जीव का ब्रह्म से भिन्नत्व के ज्ञान का होना है। जीव को यह ज्ञान हो जाना कि वह ब्रह्म से भिन्न है और उस पर आश्रित है यह ज्ञान ही मोक्ष है। जीव कभी भी ब्रह्म के साथ तादात्म्य प्राप्त नही करता है। वह अन्तिम सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है जिसका अर्थ ईश्वर के समान शक्तियों का भोग करना है। जीव कभी भी ब्रह्म के साथ एक्य स्थापित नहीं करता। स्वामी सेवक का भेद नित्य व स्वाभाविक है क्योंकि यह दोनों के स्वभाव में निहित है यही मध्व की धारणा है।

श्रुतियों में जहाँ जीव ब्रह्म के अभेदपरक कथन का उल्लेख मिलता है क्यों कि वे उपजीवक है और जो श्रुतिवाक्य भेद परक है वे उपजीव्य अर्थात मुख्य है। दूसरे शब्दों में मध्व के अनुसार जीव-ब्रह्म भेद परक श्रुति वाक्य मुख्यार्थ है तथा अभेदपरक वाक्य गौणार्थ है। कठोपनिशद् 3/1 के **'ऋत पिबन्तौ'** की व्याख्या करते हुए मध्व कहते है कि इस उद्धरण में जीव और ईश्वर का भेद बहुत स्पष्ट रूप से बतलाया गया है। जीव और ईश्वर दोनों ही शुभ कर्मो का फल भोगते है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वर भी भोक्ता है? मध्व इसके प्रत्युत्तर में ब्रह्म को भोक्ता स्वीकार करते है परन्तु उनका यह मानना है कि ब्रह्म एक भिन्न

Scanned by CamScanner

अर्थ में भोक्ता है अर्थात् वह अपने ही कर्मों का भोक्ता है जो कि जीवों के भोगों की तरह भौतिक नहीं है। मु० उप० (3/1/1) का द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया उद्धरण भी दोनों में स्पष्ट भेद करता है। इसमें जीव को बन्धन में बंधा हुआ बतलाया गया है तथा ईश्वर को बन्धन से मुक्त बताया गया है। अद्वैतवादियों के प्रिय उद्धरण तत्वमसि (छा० उप० 6/8/7) की व्याख्या करते हुए मध्व तथा व्यासतीर्थ कहते है कि यहाँ केवल आलंकारिक रूप से ही जीव व ब्रह्म के ऐक्य को बतलाया गया है वास्तविक रूप से नहीं। व्यासतीर्थ कहते है कि यह उद्धरण लक्षणा पर आधारित है अतः इसका मुख्यार्थ जीव-ब्रह्म का अभेद नहीं है। मध्व का यह मत है कि ''तत्वमसि'' की व्याख्या में उद्दालक द्वारा श्वेतकेतु को दिए गए समस्त नौ दृष्टान्त जीव-ब्रह्म के ऐक्य को न बतलाकर जीव की ब्रह्म पर निर्भरता को ही सिद्ध करते है। इसलिए मध्व अन्ततः तत्वमसि की व्याख्या अतत् त्वम् असि अर्थात तुम (जीव), वह (ब्रह्म) नहीं हो के अर्थ में करते है।

इस प्रकार मध्व यही प्रमाणित करने का प्रयास करते है कि जीव ब्रह्म से भिन्न है तथा वह ब्रह्म पर आश्रित है। दोनों में मूलभूत भेद है। इसीलिए जीव सदैव ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए ईश्वरोन्मुख रहते है।

मध्व के दर्शन की एक विशेष बात यह है कि वह जीव को ब्रह्म की तुलना में शूद्र मानते हुए भी उसे उतना ही सत्य मानते है जितना ईश्वर को। उनके दर्शन में जीव और जगत् ईश्वर के समान ही सत्य है। इस प्रकार मध्व का द्वैतवाद शंकर व रामानुज दोनों के ही सिद्धान्तों से पर्याप्त मतभेद रखता है।

निम्बार्काचार्य का भेदाभेदवादी सिद्धान्त

निम्बार्क जीव व ब्रह्म के मध्य भेदाभेद सम्बन्ध को स्वीकार करते है। जहाँ एक ओर परमात्मा आनन्दमय नित्य आविर्भूत ज्ञान स्वरूप, निर्लेप तथा भोक्ता नहीं है वहीं दूसरी ओर जीव आनन्द के हेतु अनुकर्ता तथा भोक्ता है। वह अणुरूप होने तथा ईश्वर द्वारा नियम्य होने के कारण ईश्वर से भिन्न है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है, अंशाशीभाव से जीवात्मा और परमात्मा भिन्न है परन्तु अन्ततः दोनों में अभेद है।[16] जिस प्रकार सूर्य अनेक जलाशयों में प्रतिबिम्बित होते हुए भी जल के वृद्धिह्रास आदि दोषों से स्पष्ट नहीं होता उसी प्रकार जीवात्मा के दोषों से अन्तर्यामी ब्रह्म स्पष्ट नहीं होता।[17] निम्बार्काचार्य **'तत्वमसि'** महावाक्य की व्याख्या करते हुए यह कहते है कि ''तत्'' पद स्वतन्त्र व्यापक ब्रह्म का वाचक है तथा **'त्वम्'** पद नियम्य जीव का वाचक है एवं **'असि'** का तात्पर्य उनके भेदाभेद प्रदर्शन में है।

निम्बार्क के मतानुसार जीवात्मा उसी प्रकार सत्य तत्व है जिस प्रकार परमात्मा अन्तर्यामी और जीव का उद्धार करने वाला है। वेदान्त कामधेनु में यही बात बताते हुए कहा गया है कि क्षर-अक्षर, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, विद्या-अविद्या, इन्द्रिय-मन आदि तत्व, सभी वस्तुऐं तथा वेद सूत्रों में प्रतिपादित भोग्य, भोक्ता और प्रेरिता, जिज्ञासु, जिज्ञासा और जिज्ञास्य ये सभी बह्मात्मक है इसलिए सत्य है।[18] जीव, जगत् आदि सभी परमात्मा के अंश है इसी कारण वे सत्य है क्योंकि परमात्मा सत्य स्वरूप है। जगत् में जो मिथ्यात्व का आभास होता है वह परमात्मा की अविद्या (माया) का आवरण है, उसको विद्या के द्वारा हटा देने से जगत का ईश्वरत्व सत्यतत्व का प्रकाश हो जाता है। वेदान्त कामधेनु में द्वैताद्वैत अर्थात् भेदाभेद को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि क्रोधादि भोग्य वृत्तियों का भोक्ता जीवात्मा जब सद्विवेक की प्रेरणा से परमात्मा के आश्रय में, अपने को अज्ञान बनाकर उसी में संलग्न कर देता है, तब उसका भोग्य, भोक्ता और प्रेरिता एकमात्र परमात्मा ही जो जाता है। यही परमात्मा के तीन रूप भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता का अद्वैत भाव है। इस बात को निम्बार्क ब्रह्मसूत्र के **'अहिकुण्डलवत'** के उदाहरण से समझाते हुए यह कहते है कि जिस प्रकार सर्प, कुण्डली का कारण है तथा कुण्डली, सर्प का परिमाण है। सर्प स्वतन्त्र है जबकि कुण्डली निर्भर है, यह बात एक ओर तो सर्प और उसके कुण्डली में भेद बतलाती है वहीं दूसरी ओर यह भी सत्य है कि कुण्डली का अस्तित्व और क्रिया-कलाप, सर्प

Scanned by CamScanner

की अनुपस्थिति में असंभव है, इस बात से सर्प व उसकी कुण्डली के मध्य अभेद स्थापित होता है। निम्बार्क इन्हीं मतों के द्वारा जीव, जगत् व परमात्मा के मध्य स्वाभाविक भेदाभेद के सिद्धान्त को स्वीकार करते है।

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद

वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत वाद को **'ब्रह्मवाद'** के नाम से भी जाना जाता है। **'ब्रह्मवाद'** का तात्पर्य है कि समस्त दृश्यमान जगत् ब्रह्म ही है, जीव भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है। जीव एवं जगत् ब्रह्म के ही अंश है। अतएव जिस प्रकार सत्स्वरूप ब्रह्म सत्य है उसी प्रकार जीव एवं जगत् भी सत्य है। इसके विपरीत शंकराचार्य केवल ब्रह्म को सत्य तथा जीव को मिथ्या मानते है।[19] वे जीव को ब्रह्म से अलग नहीं, एक मानते है। निम्बार्क जीव तथा ब्रह्म में अभेद सम्बन्ध मानते है तथापि अभेद होते हुए भी भेद है। रामानुज अन्तर्यामी परमेश्वर, चित् जीव एवं अचित् जगत् तीनों को नित्य मानते है परन्तु जीव तथा जगत् को स्वतः स्वतन्त्र होते हुए भी ईश्वर के अधीन स्वीकार करते है। वल्लभाचार्य के अनुसार जीव अल्पज्ञ है। वह अपने अंशी सर्वज्ञ परमात्मा के अधीन है अर्थात् जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है और ब्रह्म के वश में है।

वल्लभ अविकृत परिणामवाद का प्रतिपादन करते है जिसका तात्पर्य है कि कारण स्वरूपतः अविकृत रहते हुए कार्य रूप में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी जगत् के रूप में परिणत होकर भी उसी प्रकार अविकृत बना रहता है जिस प्रकार सुवर्ण आभूषण बनकर भी अपने स्वरूप को नहीं खोता। जैसे सर्प अपने को संकुचित और विकसित करता है उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी क्रीड़ा के लिए जगत् का रूप बदलता है।

अन्य वैष्णवाचार्यो के समान वल्लभ भी ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण स्वीकार करते है। **'तत्तु समन्वयात्'** (ब्र० सू० 1/1/3) के आधार पर वल्लभाचार्य कहते है कि ब्रह्म अपने सत् चित् और आनन्द रूप से सर्वव्यापक है। इस आनन्दादि गुणों से ही वह अपनी इच्छाशक्ति द्वारा नाम रूप और कार्यरूप से जीव व जगत् का आविर्भाव करता है प्रकृति भी ब्रह्म का ही अंश है।[20] अतएव ब्रह्म सर्वव्यापक है। ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है। **'बहु स्याम् प्रजायये'** (छा० उ० 6/2/3) आदि श्रुतियों से ब्रह्म का कर्ता व कर्म दोनों होना स्पष्ट होता है। जिस प्रकार एक मृत्पिण्डेन का ज्ञान होने से समस्त मृण्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है अतः मृतिका ही सत्य है उससे बने हुए समस्त पदार्थ नामरूपात्मक है। कार्य कारणरूप से सत्य है, मिथ्या नहीं है। उसी प्रकार ब्रह्म सत्य है तथा ब्रह्म से उत्पन्न नामरूपात्मक जगत् दोनों सत्य है।[21] यह कहा जा सकता है कि सच्चिदानन्द भगवान को जब रमण करने की इच्छा होती है अर्थात् एक से अनेक रूपों में अभिव्यक्ति की इच्छा होती है, तब वे स्वयं जगत् जीव और अर्न्तयामी रूपों में अभिव्यक्त होते है। इसमें भगवान की इच्छा क्रीड़ा या लीला ही एकमात्र हेतू है। यह अभिव्यक्ति वास्तविक है, माया कल्पित नहीं है। यह विवर्त भी नहीं है। तथा यह विकारयुक्त परिवर्तन भी नहीं है। वल्लभ मत में इसे अविकृत परिणाम कहा जाता है।[22] भगवान ही अविकृत भाव से जगदादि रूप ग्रहण करते है। जिस प्रकार कटक-कुण्डलादि सुवर्ण के अविकृत परिणाम है क्योंकि कटककुण्डलादि रूपों में परिणत होने पर भी सुवर्ण में विकार नहीं होता और उन्हें गलाकर पुनः सुवर्ण में परिणत किया जा सकता है, उसी प्रकार अविकृत भाव से जगदादिरूपों में अभिव्यक्त होने पर भी बह्म में कोई विकार नहीं होता। कार्यब्रह्म और कारणब्रह्म दोनों शुद्ध ब्रह्मरूप होने से एक ही है। इस कारण जगत् और जीव सत्य है, नित्य है। अतः ये उत्पत्ति और विनाश रहित है। उत्पत्ति का यहाँ अर्थ आविर्भाव तथा विनाश का अर्थ तिरोभाव से है। परन्तु वल्लभ ने आविर्भाव व तिरोभाव का अर्थ **'अनुभव योग्य होना'** व **'अनुभव योग्य न होना'** से लिया है।[23] जिस प्रकार सूर्य से या दीपक से या मणि से प्रकाश की किरणें निकलती है अथवा जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग व्युच्चरित होते है उसी प्रकार ब्रह्म से जगत व जीव व्युच्चरण हाता है। परन्तु व्युच्चरण होने पर भी जगत् या जीव की नित्यता अक्षुण्ण रहती है। सच्चिदानन्द भगवान के अविकृत सदंश से जड़ जगत का निर्गमन होता है, इसमें सदंश का आविर्भाव और चिदंश तथा आनन्दाशं का तिरोभाव रहता है। तथा भगवान के अविकृत चिदंश से जीवों का निर्गमन होता है इसमें सदंष

Scanned by CamScanner